दिसम्बर १९९० हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

अभय अभय हुआ

हमारे सामने एक और चित्र उभर कर आया है जिसमें बिम्बिसार के वात्सल्य प्रेम का चारु चरित्र प्रकट होता है। हम देखते हैं कि वह अपने पुत्रों को एक समान पैत्रिक प्यार देता है। किसी से भेदभाव नहीं करता। यद्यपि अभय एक वेश्या से जन्मा हुआ पुत्र है, पर वह अन्य राजपुत्रों के समान ही राजमहल में पाला पोसा जाता है। उसे राजपुत्रों के अनुकूल सारी शिक्षा-दीक्षा मिलती है। रणकौशल की कला में भी उसे पूर्ण निपुणता प्राप्त करायी जाती है। अन्य राजपुत्रों के समान वह शूर-वीर है। सैन्य संचालन की विद्या में कौशल्य-प्राप्त है।

एक बार मगध साम्राज्य के किसी सरहदी सूबे में बलवा हो जाता है। बगावत का दमन करने के लिए राज्यसेना के साथ राजकुमार अभय को भेजा जाता है। बिम्बिसार को अपने पुत्र अभय की योग्यता पर पूरा विश्वास है। अभय इस विश्वास को सही साबित करता हुआ, विद्रोह का दमन करता है और विजयी होकर राजगृह लौटता है। पिता बिम्बिसार की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं। इस विजय के उल्लास में राजकुमार को उचित पारितोषिक देना चाहता है। क्या उचित पारितोषिक होगा? अभय अभी युवा है। बिम्बिसार को अपनी युवावस्था याद आती है। उन दिनों उसकी कामतृष्णा कितनी उद्दाम थी। कुमार अभय को भी इस युवावस्था में कामरागरतिरंग की आकांक्षा होगी ही। इसकी पूर्ति के लिए बिम्बिसार ने उसे नगर की एक सर्वांगसुंदरी तरुणी नृत्यांगना भेंट में दी। पर केवल इतने से उसे संतोष नहीं हुआ। "मेरा यह पुत्र वेश्या की कोख से जन्मा है। मैं अब भले इसके साथ अन्य राजकुमारों जैसा बर्ताव करूं, परंतु वंश परम्परा के नियमानुसार मेरी मृत्यु के पश्चात् किसी भी हालत में यह राजसिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता। अतः भले अल्पकाल के लिए ही सही, क्यों न मैं इसे राज्यसत्ता का रसास्वादन करवाऊं? इसे राज्य-सत्ता सौंप दूं। मेरा प्यारा पुत्र सात दिनों तक तो राज्यवैभव भोगे!" इस वात्सल्य भाव के प्रबल प्रवाह में उसने अभय को एक सप्ताह के लिए राज्यसिंहासन पर बिठा दिया। सात दिन के लिए राज्य की बागडोर उसके हाथ में पकड़ा दी। विपुल राज्यश्री का अतुल वैभव राजकुमार के आधीन था। उसने उसका भरपूर उपभोग किया। सात दिन राजमहल में रहते हुए रागरंग में बिताए। सात दिनों के कामभोग से वासना की आग बुझी नहीं; और प्रज्वलित हुई। आठवें दिन उस नृत्यांगना को साथ लेकर राजमहल से बाहर आया और काम-क्रीड़ा के लिए नदीतट पर गया।

नदी में स्नान करके दोनों पुनः आमोद-प्रमोद में तल्लीन हो गए। नृत्यांगना की कामोत्तेजक नृत्यकला ने अभय को मोहित कर लिया। तरुणी नर्तकी खुले आकाश के तले तट पर नाचती रही और अभय उसे निर्निमेष देखता रहा। एकाएक नर्तकी के पेट में भयंकर वातशूल उठा। असह्य पीड़ा के मारे वह दुहरी हो उठी। नृत्य की गति शिथिल पड़ गयी। नर्तकी अपना पेट दबाए हुए वहीं बैठ गयी। मोहविमूढ़ित अभय ने समझा कि यह भी नृत्यकला के अभिनय की कोई भावभंगिमा है। पर देखते ही देखते नर्तकी वहीं ढेर हो गयी। अभय को होश आया। तबतक उसके प्राणपखेरु उड़ चुके थे। निश्चल, निर्जीव लाश धरती पर पड़ी थी।

अभय राजकुमार को बहुत बड़ा धक्का लगा। ऐसी हृष्टपुष्ट देह क्षणभर में काष्ठवत निर्जीव हो गयी। चंद क्षणों पूर्व उद्दाम वासना जगानेवाली नृत्यांगना, अब कैसे निश्चल हो गयी। अभिनय कला में परिपूर्ण पारंगत नृत्यभंगिमा कैसे पथरा गई? आंखें खुलीं तो खुलीं ही रह गयीं। पलक तक नहीं झपक पाती। सदा मुस्कान लिए हुए मनोहारी होठों पर करालकाल ने दर्दनाक पीड़ा की गहरी छाप अंकित कर दी। अभय के लिए यह दृश्य असह्य हो उठा। उसके मन में इस बात का बहुत बड़ा पश्चाताप जागा कि विद्रोहियों के इतने बड़े समूह को परास्त कर जो अपनी सेना के एक-एक सैनिक को सकुशल बचा कर ले आया, वैसा महापराक्रमी राजकुमार अभय अपनी प्राणप्यारी प्रेयसी को काल-कवलित होने से नहीं बचा पाया। प्रियतमा का बिछोह और उसे न बचा पाने का पश्चाताप, इस दुहरे आघात ने राजकुमार को शोक-विह्वल कर दिया। उसका दुख भुलाए नहीं भूलता था। प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता था।

कौन उसे इस गहरे दुख से उबारे? कौन उसके हृदय के घाव भरे? एकाएक राजकुमार को भगवान बुद्ध याद आए। उन महान कारुणिक के मैत्री चित्त से मिश्रित प्रज्ञाभरी वाणी उसने बार-बार सुनी थी। यद्यपि उनके बताए हुए साधना मार्ग का उसने कभी अनुगमन नहीं किया था, परंतु उनकी वाणी में सद्धर्म का अद्भुत विश्लेषण उसने अनेक बार सुना था। उसी से आश्वस्त-विश्वस्त हुआ था। उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि यह महापुरुष सचमुच शुद्ध हैं, बुद्ध हैं, मुक्त हैं, सर्वज्ञ हैं। इन्होंने सभी दुःखों के मूल कारण को जाना है, उसके निवारण को जाना है। वह स्वयं दुःखमुक्त हुए हैं। औरों को दुःखमुक्ति की साधना सिखाते हैं। ये ऐसे महापुरुष हैं जो मुझे भी इस असह्य दुःख से विमुक्त होने का सही मार्ग दिखा सकते हैं। दुःखमुक्त कर सकते हैं।

व्यथा-विह्वल, आतुर, कातर राजकुमार भगवान तथागत की शरण में पहुँचा। भगवान ने उसकी शोकसंतप्त मनोदशा देखी। उनकी करुणामृत-सिंचित वाणी की वर्षा ने उसके संतापित हृदय को शीतल किया।

भगवान ने समझाया, "राजकुमार! कल्प पर कल्प बीते। इन असंख्य कल्पों के अनगिनित जन्मों में इस जैसी अनगिनित प्रेमिकाओं से वियोग हुआ है तुम्हारा। इन वियोगजन्य विलापों में तुमने जो आंसू बहाए हैं, उनका कोई प्रमाण नहीं। वह सारे आंसू एक जगह एकत्र किये जायं तो किसी भी महासागर से कम नहीं होंगे। भविष्य के अनगिनित जीवनों में भी इसी प्रकार का प्रिय-वियोग होते रहनेवाला है। उससे तुम छूट नहीं गये हो। अतः यह रोना कितनी नासमझी भरा है। आखिर तुम किसके लिए रो रहे हो?"

अभय के समझ में आने लगा। सचमुच मैं किसके लिए रो रहा हूं? आठ दिन पूर्व मैं इस लड़की को जानता तक नहीं था। इसका मुँह तक नहीं देखा था। इसका नाम तक नहीं सुना था। यह रोना तो वस्तुतः अपनी आसक्ति का है। जिसे प्रिय मान लिया, उसी से आसक्त हो गया, उसके प्रति चिपकाव पैदा कर लिया। बिछोह हुआ तो व्याकुल हो गया। जिससे कोई आसक्ति नहीं, उससे बिछोह भले हो, कहां व्याकुलता पैदा होती है? तो व्याकुलता का कारण प्रिय के प्रति सतृष्ण आसक्ति ही तो है। जो अनित्य है, देरसबेर समाप्त होने वाली है, उसके प्रति जागी हुई आसक्ति दुख की जननी साबित होती है और अनित्य तो सभी हैं। देरसबेर सभी काल के गाल में समा जाते हैं। कोई किसी को बचा नहीं सकता।

भगवान ने उसकी मनःस्थिति में सुधार आते देखा तो प्रज्ञाभरी वाणी में कहा –"शोक में डूबना नासमझी का काम है। तुम्हें इसके बाहर निकलना चाहिए।" और यह धर्मवाणी उनके मुखारविंद से फूट पड़ी –

एत्थ पस्सथ इमं लोकं चित्तं राजरथूपमं
यत्थ बाला विसीदन्ति नत्थि सङ्गो विजानतं।

देखो इस लोक को, यह रंग-बिरंगे राजरथ के समान ख़ूबसूरत दिखता है। समय पाकर जैसे चित्रित रथ जीर्ण-शीर्ण हो जाता है, ऐसे ही लोक भी जीर्ण होकर नष्ट हो जाता है। नासमझ ही इसे ऐसा होते देखकर व्याकुल होते हैं। समझदार लोग इस पर आसक्त नहीं होते, व्याकुल नहीं होते।

अभय राजकुमार ने कभी विपश्यना साधना का अभ्यास नहीं किया था। अब तक वह भगवान की प्रज्ञापूर्ण वाणी से बौद्धिक स्तर पर प्रभावित हुआ था। धर्म का ऐसा सांगोपांग विश्लेषण करनेवाला, उनके जैसा अन्य कोई आचार्य उसे नहीं मिल पाया था। उनके प्रति असीम श्रद्धा जागी थी। उनकी धर्मवाणी से उसे बहुत आश्वासन मिला था। इस दुख की घड़ी में उनकी शरण आया था। परंतु उसका पुण्य उदय हुआ। अनेक जन्मों में संग्रह की हुई पारमिताओं का बल जागा। जैसे-जैसे भगवान की वाणी सुनता गया, वैसे-वैसे मन शांत होता गया, समाहित होता गया और अपने भीतर यथाभूत सत्य की अनुभूति करने लगा। स्वतः विपश्यना होने लगी। अपने भीतर संवेदनाओं की प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगी। सर्वत्र उदय-व्यय ही उदय-व्यय। सारे शरीर में अनित्य-बोध की धारा प्रवाहमान हो उठी और मन इस अनित्य-बोध के आधार पर समता में स्थित होता गया। कुछ समय बाद शरीर और चित्त की अनित्यता का सारा क्षेत्र एकाएक निरुद्ध हो गया और उसके परे की नित्य, शाश्वत, ध्रुव, परम सत्य अवस्था का चंद क्षणों के लिए साक्षात्कार हो गया। अभय मुक्ति के स्रोत में पड़ गया। स्रोतापन्न हो गया। अब उसकी श्रद्धा केवल बुद्धिजन्य नहीं रह गयी। वह अनुभवजन्य हो गयी थी।

***

इसके बाद बहुत सा समय बीतने पर जब महाराज बिम्बिसार का शरीरान्त हुआ तो उसके मन में गहरा धर्मसंवेग जागा और वह गृह त्यागकर भगवान के पास प्रव्रजित हो, **तालच्छिग्गलूपम सुत्त** की धर्मदेशना सुनकर समीप के वनप्रदेश में जाकर एकांत विपश्यना का अंतरतप करने लगा। उसको अपनी पुरातन पारमिताओं का संबल मिला और भीतर ही भीतर अनित्य-बोध और अधिक स्पष्ट अनुभव होता गया। सूक्ष्म अवस्थाओं से गुजरता हुए, नितांत समत्व भाव में स्थित होता हुआ, अपने पूर्वसंचित कर्मों की निर्जरा करने लगा। यों कर्मबंधनों का क्षय होते-होते एक के बाद एक फल समापत्तियां उपलब्ध करता हुआ, अर्हंत अवस्था तक जा पहुँचा। उसका भवचक्र समाप्त हो गया। वह नितांत दुखविमुक्त हुआ।

उसने प्रत्यवेक्षण किया। भगवान के संपर्क में आने के समय से उस परममुक्त अवस्था प्राप्त होने तक की कल्याणकारी अनुभूतियों का पुनरावलोकन किया। गजावलोकन किया। तब यह हर्ष के उद्गार उसके मुँह से स्वतः निकल पड़े:-

सुत्वा सुभासितं वाचं बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
पच्चब्याधिं हि निपुणं वालग्गं उसुना यथा॥

जिस प्रकार कोई कुशल धनुर्धर अपने सूक्ष्म तीर से बाल की नोक का सात बार अचूक वेधन करने में निपुण हो, वैसे ही आदित्यबंधु भगवान की आर्यसत्य को बींधनेवाली निपुण वाणी मैंने सुनी।

और भाग्य जागा अभय राजकुमार का। उस धर्मवाणी से प्रेरित हो, स्वयं अपनी बींधनेवाली प्रज्ञा जगाई और उसके द्वारा अविद्या के आवरण का भेदन करता हुआ परम निरोध अवस्था का साक्षात्कार कर सका और भवभय से मुक्त हो, सही माने में अभय हो सका।

साधकों! आओ, हम भी दुगुने उत्साह के साथ धर्म पथ पर चलते हुए परम अभय अवस्था को प्राप्त करें और अपना कल्याण साध लें!

कल्याण मित्र,
स.ना.गो.